निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा

डॉ0 संतोष कुमार सिंह*
राई–बीगों, सुल्तानपुर

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा कानून में बाल शिक्षा के लिए निम्नलिखित प्रावधान किए गए है जिन पर गौर करना मुनासिब होगा। अधिनियम में 'निःशुल्क' का अर्थ है किसी भी बच्चे से किसी भी प्रकार का शुल्क या खर्च नहीं लिया जाएगा, जिससे उसके प्राथमिक शिक्षा के अधिकार में बाधा पड़ती हो। 'अनिवार्य' का अर्थ 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की भर्ती, हाजिरी और प्राथमिक शिक्षा की पूर्णता को सुनिश्चित करना है।

कक्षा 1 से 5 में पढ़ने वाले बच्चों की आयु 6 से 11 वर्ष निर्धारित की गई है और 11 से 14 वर्ष तक के आयु वर्ग के बच्चे 6 से 8 कक्षा तक की पढ़ाई कर सकेगें। इन बच्चों को उनकी उम्र के हिसाब से कक्षा में दाखिला सुनिश्चित किया गया है।

कक्षा 5 तक 200 दिन और कक्षा 6 से 8 तक 220 दिन तक स्कूलों में पढ़ाई जरूरी है। इसके साथ ही पांचवी कक्षाा तक शिक्षक–छात्र अनुपात 1:30 होगा। मानसिक या शारीरिक दण्ड, केपिटेशन शुल्क, शिक्षकों द्वारा ट्यूशन लिए जाने और बिना मान्यता के विद्यालय चलाने पर प्रतिबन्ध है।

सभी केन्द्रीय विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों, सैनिक स्कूलों और गैर–सहायता प्राप्त निजी स्कूलों में आर्थिक दृष्टि से कमजोर बच्चों के लिए 25 फीसदी सीटों के आरक्षण का प्रावधान है।

प्राथमिक स्कूलों में बच्चों के स्क्रीनिंग पर रोक है तथा इसका उल्लंधन करने पर 25 से 50 हजार रुपये जुर्माने की व्यवस्था है। इसके अलावा बच्चों की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार की निगरानी तथा सुरक्षा एवं इससे संबंधित शिकायतों के निपटाने के लिए राष्ट्रीय और राज्य बालाधिकार आयोग की व्यवस्था की गई है। आयोगों के पास दीवानी न्यायालयों के समान अधिकार होगें।

उपर्युक्त संविधान संशोधन से निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को बेहतर ढंग से क्रियान्वित किया जा सकेगा। यद्यपि भारत सरकार ने शिक्षा में सुधार के लिए 2001 से ही सर्वशिक्षा अभियान चला रखा है। जिसमें 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को उपयोगी शिक्षा दिलाने का लक्ष्य रखा गया है। इस अभियान में केन्द्र और राज्य के खर्च का अनुपात 65.35 का है, पूर्वोत्तर राज्यों के मामले में यह 90.10 का है। प्रारम्भ में इस अभियान में सरकार को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बच्चे स्कूल नहीं आते थे या फिर उनके अभिभावक उन्हें काम पर भेज देते थे। सरकार ने बालश्रम कानूनों को कठोर बनाकर बालश्रम पर रोक लगाई और अधिकाधिक बच्चों को स्कूल में दाखिल होने के अनेक तरीके अपनाए। जिसमें से एक तरीका था स्कूल में छात्रों के लिए भोजन का प्रबन्ध करना। 1995 से ही स्कूलों में भोजन की व्यवस्था की गई। इसे आगे चलकर 'मध्याह्न भोजन योजना' का नाम दिया गया और सन् 2002 से इसे बढ़ाकर सरकारी स्कूल, सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल, स्थानीय निकाय स्कूल, एआईई एवं मदरसों के कक्षा 8 तक के बच्चों को शामिल कर लिया गया। सन 2004 में इसमें संशोधन कर सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों, ईजीएस/एआईई केन्द्रों में पढ़ाई कर रहे कक्षा 1 से 5 तहक के सभी बच्चों का 300 कैलोरी तथा 8 से 10 ग्राम प्रोटीन वाला पका हुआ भोजन प्रदान कराने की व्यवस्था की गई। जुलाई 2006 से इसे 450 कैलोरी और 12 ग्राम प्रोटीन पर केन्द्रित कर दिया गया। उच्च प्राथमिक स्तर पर इस पोषण मानदण्ड को 700 कैलोरी तथा 20 ग्राम प्रोटीन पर निर्धारित किया गया है।

इस प्रकार की योजनाओं का बड़ा लाभ हुआ है, यद्यपि इसकी सीमाएं भी हैं। वर्ष 2011 में ग्रामीण भारत में 6–14 वर्ष के सभी बच्चों में से 96.7 प्रतिशत बच्चों का विद्यालयों में नामांकन हुआ है। यह संख्या स्थिर बनी हुई है। जिन राज्यों का वर्ष 2006 में विद्यालय से बाहर रहने वाली 11 से 14 वर्ष तक की लड़कियों का उच्च अनुपात 10 प्रतिशत से अधिक था, ऐसे राज्यों ने महत्वपूर्ण प्रगति की है। उदाहरण के लिए बिहार में विद्यालय से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या 2006 में 17.6 प्रतिशत से गिरकर 2011 में 4.3 प्रतिशत रह गई है। इसी के साथ राष्ट्रीय स्तर पर 6 से 14 वर्ष तक के आयु समूह में वर्ष दर वर्ष निजी विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है जो 2006 में 18.7 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 25.6 प्रतिशत हो गया है। ये वृद्धि बिहार को छोड़कर सभी राज्यों में दृष्टिगोचर हुई है।

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि बाल शिक्षा में सरकारी और गैर–सरकारी स्तर पर जो भी प्रयास किए गए है, उनसे बाल शिक्षा में अवसरों की बढ़ोतरी हुई है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने वर्धा शिक्षा योजना के माध्यम से शिक्षा की जो रूपरेखा बनाई थी, कमोवेश वही नैतिक संकल्प के साथ शिक्षा खासकर बाली शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हो रहा है। कस्तूरबा गांधी विद्यालय जैसे कार्यक्रम उन्हीं सपनों पर आधारित है। लेकिन बाल शिक्षा के समक्ष चुनौतियां भी हैं। अगर हम राज्यों के बुनियादी शैक्षणिक स्तरों पर गौर करें तो पाते हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर समूचे उत्तर भारत के कई राज्यों में शैक्षणिक स्तरों में गिरावट हुई है। कक्षा पांच के बच्चों द्वारा कक्षा दो के सतर का पाठ पढ़ने की सामर्थ्य के अनुपात का अखिल भारतीय आंकड़ा 2010 में 53.7 प्रतिशत से गिरकर 2011 में 48.2 प्रतिशत रह गया। हालांकि दक्षिण भारत के राज्यों में ऐसी गिरावट नहीं हुई है। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में अनेक राज्यों ने भी सकारात्मक परिवर्तन दर्शाए है। अगर अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों की उपस्थिति में वर्ष 2007 के 73.4 प्रतिशत आंकड़े से वर्ष 2011 में गिरकर 70.9 प्रतिशत दिखी है। कुछ राज्यों में इस समय के दौरान बच्चों की उपस्थिति में तीव्र गिरावट हुई है, मसलन बिहार के प्राथमिक विद्यालयों में 2007 के दौरान बच्चों की औसत उपस्थिति 59.0 प्रतिशत थी तथा 2011 में 50.0 प्रतिशत थी। मध्य प्रदेश में यह 2007 में 690 प्रतिशत से गिरकर 2011 में 54.5 प्रतिशत तथा उत्तर प्रदेश में 2007 के 64.4 प्रतिशत से 2011 में 57.3 प्रतिशत हो गई हैं इसके अलावा भी अन्य कारण है जो हमारे समक्ष चुनौती की तरह खड़े हैं तथा हमें उनसे निपटने की जरूरत है। बच्चों को निर्धारित अवधि तक विद्यालय में रोके रखना भी एक बड़ी चुनौती है। गंभीरता से देखे तो इस समस्या के बड़े कारणों में शिक्षक को कमी, उसकी अपर्याप्त तैयारी, शिक्षकों में मनोवृत्ति की कमजोरी, विद्यालयों में बच्चों के पास आधुनिक उपकरणों का न होना, सरकारी विद्यालयों में छात्रों के बैठने के लिए भवन, शौचालयों की समुचित व्यवस्था न होना, पीने के स्वच्छ पानी का अभाव, बैठने का अपर्याप्त स्थान, पढ़ाई के तकनीकों का अभाव आदि शामिल है। नामांकन को सार्वभौमिक आदि शामिल हैं। नामांकन को सार्वभौमिक बनाने की चुनौती भी मुंह बाए खड़ी है। इसकी मुख्य वजह बच्चों की आर्थिक दशा का खराब होना है, उन्हें अपने माता–पिता के साथ जीवकोपार्जन में सहायता करनी पड़ती है। साथ ही साथ शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक विकास देखने को मिलता है। जहां शहरी क्षेत्रों में अधिक सुविधाएं है वही ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं का अभाव है, शहरी माता–पिता अधिक पढ़े–लिखे और कुशल होते हैं, वहीं ग्रामीण मां–बाप अनपढ़ होने के कारण अपने बच्चों को सही दिशा नहीं दे पातें। जो ग्रामीण थोड़ा पढ़े–लिखे हैं वे संसाधनों के अभाव में मजबूर हैं। आजकल गांवों के आस–पास जो निजी स्कूल कुकुरमुत्ते की भांति उग आए हैं उनमें घटिया तथा बाजारू शिक्षा मिलती है। आज के दौर में बच्चों को नैतिक शिक्षा की जगह पैसे की भागदौड़ में शामिल होने की शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया जाता है। यद्यपि शिक्षा का प्रारम्भ से ही रोजगारपरक रुख होना चाहिए, लेकिन उसे पूंजी की अंधी दौड़ में शामिल करना ख़तरे से खाली नहीं है। शहरी निजी स्कूलों के बच्चे बस्ते के भारी बोझ तले दबे जा रहे हैं, अधिक से अधिक अंकों की होड़ ने उनसे उनका बचपन छीन लिया है। आज के माता–पिता को बच्चे एक मशीन की तरह दिखाई देते हैं, जिसकी वजह से बाल शिक्षा पर एक संकट और छा गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. जान डब्ल्यू, वेस्ट–रिसर्च इन ऐजूकेशन न्यू दिल्ली।
2. शर्मा, डॉ0 आर0ए0–शिक्षा अनुसंधान संस्करण, 1995
3. ड्रेजजीन एवं गोयरल अपर जिला 2, फ्यूचर आफ मिड–डे–मील फ्रन्ट लाइन 1, अगस्त 2003